ॐ ब्रह्म सर्वम्

केनोपनिषद्

ब्रह्मयोगी संविदानन्द
द्वारा अभिव्यक्त

शान्तिपाठ

ॐ आप्यायन्तु ममांगानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि।

सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोत् अनिराकरणं- अस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु।

तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु, ते मयि सन्तु। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

ब्रह्मविद्याके सम्यक् अधिगमके लिए निर्विकल्प संकल्प करना चाहिए।

ॐ अर्थात् अद्वयात्माको विद्यमान, उपस्थित और वर्तमान स्वीकार करना। अद्वय ब्रह्मविद्याके लिए प्राप्त उपकरण, देह, देहके सभी अंग-प्रत्यंग, शारीरिकशक्ति, प्राण और अन्तःकरण- ये स्वस्थ, समर्थ व पुष्ट रहें। 'यह सब उपनिषद्-लक्षित आत्मब्रह्म ही है'- इस श्रौत वचनका समादर करनेसे संकल्प साकार होता है।

मैं बृहत् चित् हूँ और बृहत् चेतन मैं ही हूँ- ऐसा पूर्ण बोध मुझमें व्यक्त हो। मुझ तत्पर जिज्ञासुमें अर्थात् स्वयंताकी ब्रह्मताके अनुसन्धित्सुमें औपनिषद ब्रह्मविद्याके लिए अपेक्षित नियम-संयम अभी अभिव्यक्त हों। आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक अनुकूलता बाहर-भीतर उपस्थित रहे।

प्रथम खण्ड

प्रथम मन्त्र

ॐ केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः। केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति॥

ॐ अर्थात् सुषुप्तिशेष प्रत्यक् ब्रह्मसुखका हम स्मरण करते हैं।

किसके द्वारा और किसके लिए प्रकाशन (वृत्ति) प्रवृत्त-निवृत्त होता है?

क्या ब्रह्मसुखके लिए ही जीवनकी प्रत्येक चेष्टा या स्फुरणाका उदय-विलय होता है?

विश्व और जीवनमें क्रियाशक्ति या स्पन्दन किससे और किसके लिए व्यक्त-अव्यक्त होते हैं?

क्या ब्रह्मसुखसे और अद्वयसुखके लिए ही समस्त गतियाँ, शक्तियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, बहिःकरण, अन्तःकरण आदि कार्य करते हैं। वह सुख क्या है? क्या वह अक्षयसुख तुम्हें मिला?

'अथातो आनन्दं जिज्ञासा।' मन, प्राण, वाक्, चक्षु, श्रोत्र- ये प्रधानरूपसे आध्यात्मिक हैं। इनका प्रकाशक, इनका अधिष्ठान, इनका सुखप्रदाता, इनका शास्ता, इनका सर्वस्व कौन है?

वह क्या वस्तु या सत्यसुख है, जो इन सबका प्रयोजन, लक्ष्य, केन्द्र, उद्देश्य, सार, आधार अर्थात् सबकुछ है? यह, वह या मैं? इस प्रदीप्त जिज्ञासाका आधार है- मैं। इसीका साक्षादपरोक्ष ही जीवन व जगत्का अनुसन्धेय है, विज्ञेय है और श्रेय है।

दूसरा मन्त्र

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः।

चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥

आत्मानन्दकी जिज्ञासा होनेपर, उसकी उपलब्धिके लिए आत्मब्रह्मानन्दका स्वरूप बताया जाता है कि यह साक्षादपरोक्ष अद्वयानन्द 'इति' पदका वाच्य नहीं है। आनन्दब्रह्म मैं स्वयंप्रकाश, स्वतःसिद्ध, समस्त करणोंसे निरपेक्ष, सर्वकारण अकारण अविषय है। यही सर्वकरणों, कारणों, चेष्टाओं-स्पन्दनों, सिद्धियोंका अधिष्ठान-प्रकाशक, परं प्रेमास्पद अद्वितीय है। इस आनन्दरूप मैं को किसप्रकार जानें, समझें, पहचानें और अनुभव करें?

इस विजिज्ञासाके साथ जो कुछ भी दृश्य, प्रतीति या अनुभाव्य है, उसके प्रति अतिमुच्य होकर अर्थात् उससे विमुख होकर उसका चिन्तन न करें, उधर ध्यान न दें। इसप्रकार सबका अतिक्रमण हो जाता है। तब केवल जाग्रतिके द्वारा इस अनित्य, भ्रान्त सुखाभासोंके अभिमान व प्रतीतिसे मुक्ति मिल जाती है और अमृतत्वका, परमानन्दका अनुभव हो जाता है। अर्थात् मैं ही अपनेको अद्वयब्रह्मसुख अनुभव करता हूँ।

तीसरा मन्त्र

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो

न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि।

इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे॥

जो प्रत्यक्ष, परोक्ष, अपरोक्ष प्रतीतियोंका प्रकाशक है, जो प्रमाणोंको सिद्ध करता है, जो प्रमाणोंका विषय नहीं होता- वह क्या वस्तु है?

वह न यह हो सकता है, न ही वह। जो विचार या समझसे अनुभाव्य नहीं हो सकता- समझा नहीं जा सकता, तब उसे समझाया कैसे जाय? यह ब्रह्मसुख ज्ञात व अविज्ञातसे विलक्षण है अर्थात् यह न प्रत्यक्ष है, न परोक्ष, न अपरोक्ष, न व्यक्ताव्यक्त है; परन्तु ऐसा भी है। इस साक्षादपरोक्ष परिपूर्ण अद्वयआनन्दके अधिगमकी यही प्रक्रिया प्रचलित है। यह-वहसे विलक्षण मैं अर्थात् निर्विशेषसुखको अन्यप्रकारसे नहीं लखाया जा सकता।

चौथा मन्त्र

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥

जो न प्रमेय है, न ज्ञेय है और न ध्येय है। उसके बारेमें न कोई दृष्टि हो सकती है, न वचन। ऐसा अक्षय आनन्द ही बृहत् है (अस्तीति), मैं है (आत्मेति), तुम हो (तत्त्वमसि)- ऐसा दृढ़ अपरोक्ष निश्चय करो। जो सर्व (स्थूल-सूक्ष्म-कारण) विषय हो रहा है या विषय नहीं होता- इस रूपसे विषय होता है; वह सब अनात्मा है, असुख है, परिच्छेद है, भेद है, भय है, द्वैत है।

पाँचवाँ मन्त्र

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥

जिसकी कभी कल्पना नहीं की जा सकती, जो समस्त कल्पनाओं-मान्यताओं-भावनाओंको निरन्तर प्रकाशित करता है, जिसमें यह सब ओत-प्रोत है; वही यह अनुसन्धेय आत्मसुख परिपूर्ण है- मैं स्वयं हूँ। अन्य सबप्रकार द्वैतरूप व मिथ्या हैं।

छठा मन्त्र

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥

सभी विचार प्रक्रियाएँ, सभी दृष्टिकोण, सभी तर्क जिसे स्पर्श भी नहीं कर सकते- यह बात जिधर इशारा कर रही है- क्या यह ब्रह्मात्मानन्द नहीं है? इसके अतिरिक्त सब व्यर्थ है, निष्प्रयोजनीय है।

सातवाँ मन्त्र

चच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥

समस्त श्रुत-श्रव्य, ज्ञात-ज्ञेयको कौन निरन्तर प्रकाशित करता है? इस अनुसन्धानका जो सम्यक् समाधान है, वह है- आत्मब्रह्म या ब्रह्मसुख। अन्य और अन्यता सब असुख हैं, अनभीष्ट हैं।

आठवाँ मन्त्र

यत् प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥

प्राण, चेष्टा, गति, स्पन्दन, जीवन- ये सब जाने जा रहे हैं।

कौन जानता है? इस निदिध्यासनसे, जिस आनन्दात्माका अनुभव होता है, वही अद्वय ब्रह्मसुख है। पृथक् और पृथक्ता सुखाभास है, प्रवञ्चना है।

प्रथम खण्ड समाप्त

द्वितीय खण्ड

मूलके अनुसन्धानसे या प्रत्यक् प्रवणतारूप ब्रह्मनिदिध्यासनके द्वारा अविषय निर्विशेष बृहत्रसके अनुभवकी युक्ति तो श्रुतिने बता दी। अब अनुभवके स्वरूपपर आत्मनिरीक्षण करते हैं अर्थात् अनुभव पर्यवसायी विचार करते हैं-

प्रथम मन्त्र

यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेवापि
नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपम्।
यदस्य त्वं यदस्य देवेष्वथ नु
मीमांस्यमेव ते मन्ये विदितम्॥

निदिध्यासनरूप युक्तिका प्रयोग करनेपर यदि किसीको ऐसा लगता है कि मैंने पूर्णरूपेण आनन्दका अनुभव कर लिया है तो यह आनन्दकी परोक्षताका लक्षण है; न कि 'मैं ही आनन्दब्रह्म हूँ'- इस साक्षादपरोक्षताका लक्षण। यदि कोई ऐसा मान लेता है कि 'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्' तो सावधान। जिस आनन्दको तुम अपनेरूपमें, अपनेमें या अन्यमें मानते हो- उसपर पुनः चिन्तन और विश्लेषण करो।

द्वितीय मन्त्र

नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च।
यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च॥

ब्रह्मसुखकी निर्विशेषता अर्थात् अनुभवस्वरूपताको स्पष्ट करते हैं कि यदि कोई ऐसा नहीं मानता है कि मुझे आत्मब्रह्मरसका सम्यक् अधिगम हो गया और न ऐसा मानता है कि अभी अधिगम नहीं हुआ- ऐसी स्थितिमें कहा जा सकता है कि दृष्टि और आनन्दकी अद्वयता सम्पन्न हो गयी।

तीसरा मन्त्र

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्॥

जिसका निश्चय और स्वीकृति यह है कि अद्वयसुख अविषय है, निरपेक्ष-निर्विशेष है, यह-वहसे मुक्त है, अनुभाव्य नहीं है- मैं ही है; वही सम्यग्दर्शी है, अन्य नहीं।

चौथा मन्त्र

प्रतिबोधविदितं मतममृतत्वं हि विन्दते।
आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम्॥

यदि व्यक्ति प्रत्येक स्फुरणा और चेष्टाके प्रति प्रदीप्त अन्तर्दृष्टि रखता है तो यही निर्विशेष जाग्रति या अविस्मृति ही अनन्त आनन्द आत्मा है। इसके उदय होते ही दुःख, मृत्यु व अविद्याका आत्यन्तिक अवसान हो जाता है। आत्मानन्दके संकल्पसे ब्रह्मानन्दका निश्चय, जिज्ञासा और उत्साह व्यक्त हो जाता है। अद्वय ब्रह्मानन्दाकारवृत्तिसे व्यक्ति रसस्वरूप हो जाता है, जीवन्मुक्त आनन्दी पुरुष हो जाता है।

पाँचवाँ मन्त्र

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।

भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥

रसानुध्यान, सुखानुध्यान, आनन्दानुसन्धानको जीवनके प्रातःकालमें ही अनिवार्यरूपसे प्रतिष्ठित कर लेना चाहिए। यदि तुम वर्तमानमें ही अपने सुखस्वरूपका अनुभव कर लेते, तो जीवन और चिन्तन पूर्णतः व्यवस्थित, प्रतिकूल वेदनाओंसे मुक्त, आनन्दमय व अभय हो जाता, अन्यथा परिवर्तनशीलताके प्रभावोंमें प्रवाहित रहेगा।

जाग्रतपुरुष ही अनेकता, विविधताका अतिक्रमण कर सकते हैं। वे ही व्याप्त, अव्यक्त, परिपूर्ण, बृहत् आनन्दका अनुभव करते हैं और दृष्ट अहंकारसे व प्रतीतिसे मुक्त होकर अमृतमय, आनन्दमय, रसस्वरूप हो जाते हैं, जहाँसे लौटना नहीं होता।

द्वितीय खण्ड समाप्त

स्पष्ट दृष्टि

ॐ समादरपूर्वक ब्रह्मानुसन्धान द्वारा ही आधि, व्याधि तथा प्रतिकूल परिस्थितियोंसे अर्थात् विमुखतारूप मायासे मुक्त रह सकोगे।

ॐ यदि मुझे अपना अनुभव है तो अपनी अविस्मृति व सर्वात्मभाव उपस्थित रहने चाहिए।

ॐ अपनी नजर अपनेपर होना ब्रह्मभावना है, ज्ञानमय या आनन्दमय तप है।

ॐ चिन्तनके अनुसार ही सब प्रतीत होता है। अतः अपने चिन्तनको शीघ्र व्यवस्थित कर लो।

ॐ शरीरको चाहिए- साधारण निवास, भूख रखकर, अनुकूल, निश्चित आहार और सुषुप्ति। मनको चाहिए- सन्तोष तथा यह चिन्तन कि 'सुषुप्तिशेष आनन्दाकाश मैं सर्व हूँ- अद्वय हूँ।' इसको व्यवस्थित करनेके लिए करो- प्रार्थना या संकल्प। इसके अतिरिक्त सब 'जिसके बिना०' में हैं।

ॐ जाग्रति व अविस्मृति ही समाधान है और ये उपस्थित हैं।

ॐ सबसे महत्त्वपूर्ण और सर्वस्व वस्तु है- 'मैं'। इसे अनुभव करो, अवान्तर चेष्टा व स्फुरणसे सावधान रहो।

ॐ ब्रह्म सर्वम्

पुस्तकोंका संक्षिप्ततम सामान्य परिचय

अनन्त अक्षय शान्ति या आनन्द ही जीवनका प्रयोजन है। अद्वैतभाव ही आनन्द है; जिसका अद्वैत ब्रह्मविद्या द्वारा ही साक्षात्कार होता है। तदपश्यत् तदभवत् तदासीत्। किसी सत्पुरुषके सम्पर्कसे या सत्संकल्पसे उत्तिष्ठत जाग्रतसे यदि आपमें आनन्द ब्रह्मविद्याद्वारा अद्वैतभावकी जिज्ञासा जग जाय, तो मेरा निष्काम परामर्श यह है कि आप निम्नलिखित पुस्तकोंका जिज्ञासापूर्वक अध्ययन करें। आपको सम्यक्, स्वस्थ, स्पष्ट और अनुभवपर्यवसायी दृष्टि प्राप्त हो जायगी। प्राप्त दृष्टिपर ध्यान देते रहनेसे आप आनन्दी हो जायँगे। ये पुसतकें श्रुति, युक्ति तथा अनुभव प्रज्ञापूर्वक हैं। यदि आप योगवासिष्ठ ग्रन्थ द्वारा सम्यक् दृष्टि व स्थिति प्राप्त करना चाहें तो योगवासिष्ठका श्रवण भी कर सकते हैं। इसका ऑडियो भी यहाँ प्रस्तुत है। आगे आपकी इच्छा।

स्वाध्याय कीजिए

यदि आप सत्यानुसारी आनन्दमय जीवन जीना चाहते हों, तो निम्नलिखित पुस्तकोंका जिज्ञासापूर्वक विचार करें अथवा मेमोरी कार्ड या सी०डी० श्रवण करें-

१. त्रिपुरारहस्य, ब्रह्मयोग एवं योगभक्ति सूत्र
(भाग- १, २ व ३)
मूल्य- प्रथम भाग - १००/-
द्वितीय व तृतीय भाग- २००/-

२. योगवासिष्ठानुशीलन (भाग- १ से ४)
मूल्य- प्रथम व द्वितीय भाग १००/-
तृतीय व चतुर्थ भाग २००/-

३. सुखका परिचय एवं प्राप्ति - मूल्य ५०/-

४. ईशावास्योपनिषद - मूल्य ४०/-

५. आत्म-चिन्तन - मूल्य ५०/-

६. तदीक्षण - मूल्य ५०/-

७. सत्चर्चा, सत्चिन्तन और सत्संग - मूल्य ५०/-

८. अपनी ओर इशारा - मूल्य ५०/-

९. भक्ति-चिन्तन (नारद भक्ति-सूत्र) - मूल्य १००/-

१०. योगवासिष्ठानुशीलन, आत्मयोग, अद्वैतयोग व आत्मब्रह्मयोग पर सी०डी०- मूल्य ५०/- प्रति सी०डी०
मेमोरी कार्ड- मूल्य २५०/-